चतुर्थ अध्याय Chapter-4

भक्ति कालीन स्तोत्र साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

भक्तिकालीन स्तोत्र साहित्य मध्य कालीन भक्ति काव्य का ही एक महत्वपूर्ण अंग है। अतएव दोनों की मूल प्रेरणा एवं दार्शनिक पृष्ठ भूमि की अभिन्नता स्वाभाविक है। स्तोत्र साहित्य में दार्शनिक मतवादों का प्राय: अधिक स्पष्ट समावेश हुआ है, इसीलिए यहां भक्तिकालीन स्तोत्र साहित्य की दार्शनिक पीठिका का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस विषय में प्राय: सभी विद्वान् एक मत हैं कि पन्द्रहवी शताब्दी के आसपास उत्तर भारत में प्रवर्तित होने वाला भक्ति आन्दोलन जिसने भारतीय जनता को मध्यकालीन पराभव एवं तज्जन्यनिराशा के काल में आश्वासन प्रदान किया हिन्दी के भक्ति साहित्य का मूल स्रोत बन एक और एकेश्वर वाद के द्वारा राम और रहीम की एकता प्रतिपादन करने वाले संत कवि जाति पांति, ऊँच नीच आदि का भेद भाव कम करके सदाचार मूलक भक्ति साधना का जन जन में प्रचार करने लगे, तो दूसरी ओर भारतीय हृदय को सर्वाधिक स्पर्श करने वाले राम और कृष्ण की ललित लीलाओं का गान करने वाले सगुणतावादी भक्त कवि हिन्दू जनता के मुरझाए मनों को अतिरए परिप्लुत कर सके। इतना ही नहीं सूफी साधकों ने भी इस सांस्कृतिक पुर्नजागरण में अपना महत्वपूर्ण योग प्रदान किया। इस आन्दोलन का मूल्यांकन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'भक्ति का प्रवाह इतना प्रभावी और तीव्र बन गया कि उसकी लपटों में हिन्दू जनता ही नहीं अपितु सहृदय मुसलमान भी आ गए।[१] यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रहीम रसखानि और ताज जैसे अनेक मुसलमान भक्त कवियों की उक्तियां इस तथ्य के ज्वलंत उदाहरण हैं, जो उक्त प्रभाव के साथ यह भी प्रमाणित कर रही है कि उन्होंने भी इस देश की सांस्कृतिक परंपरा से प्रेरणा पाई थी।

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास

उपर्युक्त भक्ति आन्दोलन के सम्बंध में यह उल्लेखनीय है कि वह एकाएक घटित हो जाने वाली घटना नहीं है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने विद्वत्ता पूर्ण विवेचन द्वारा इस तथ्य को प्रकाशित किया है कि इसकी पृष्ठ भूमि शतियों पूर्व से निर्मित होती आ रही थी। जिसकी लहर उत्तर भारत की उपरि निर्दिष्ट परिस्थितियों के बीच दक्षिण से आकर प्रवाहित हो उठी। जो लोग भक्ति साहित्य के मूल में राजनैतिक परिवर्तन और निराशा की भावना को महत्व देते हैं उनका निराकरण करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है :

"यह बात अत्यंत उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तरभारत के मंदिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान् की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भाव धारा को उमड़ना था तो पहले उसे ~~सिंध~~ सिंध में और फिर उत्तरभारत में प्रकट होना चाहिए था पर वह हुई दक्षिण में।"[1] इस मत की पुष्टि करते डा० रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है .. "उत्तरभारत में जब वैष्णव भक्तों का जमाना आया उसके पहले ही दक्षिण के आलवार सन्तों में भक्ति का बहुत कुछ विकास हो चुका था और वहीं से भक्ति की लहर उत्तर भारत पहुँची। यह भी ध्यान देने की बात है कि आरम्भ में भक्ति को प्रमुखता देने वाले रामानुज माध्व, निम्बार्क और बल्लभाचार्य प्रायः सभी महात्मा दक्षिण में ही जन्में थे। उत्तर में मीरा का जन्म हुआ उसके बहुत पहले दक्षिण में आन्दाल नाम की प्रसिद्ध भगति न हो चुकी थी जो कृष्ण को अपना पति मानती थी और जिसके बारे में मीरा की तरह यह कथा प्रचलित है कि वह कृष्ण के भीतर विलीन हो गई।"[2] दक्षिण में भक्ति के विकास के मूलकारण का अनुसंधान करते हुए आपने लिखा है कि वहाँ के आलवार

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी .. हिन्दी साहित्य पृ०

२. डा० दिनकर .. हमारी सांस्कृतिक एकता पृ० ६

भक्तों की साधना के साथ भक्तिमार्गी आचार्यों की परम्परा के योग का परिणाम है। इन आचार्यों के द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय तथा उनके दार्शनिक मत ही भक्तिकालीन साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं।

दक्षिण के वैष्णव आचार्य तथा उनके दार्शनिक मतवाद :

उपर्युक्त विवेचन में भक्ति आंदोलन के दाक्षिणात्य स्रोत का उल्लेख किया गया है उसका प्रवर्तन चार महान् आचार्यों द्वारा चार संप्रदायों के ~~मस्तिष्क~~ रूप में हुआ। कालक्रमानुसार उनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है। शंकराचार्य के पीछे वैष्णव धर्म में चार सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए।

१. श्री सम्प्रदाय
२. माध्व सम्प्रदाय
३. निम्बार्क सम्प्रदाय
४. रूद्र सम्प्रदाय

१. श्री सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य माने जाते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य रामानुजाचार्य ने पूर्ण भक्ति मार्ग का एक मौलिक दार्शनिक रूप उपस्थित किया और उसे शास्त्रीय रूप दे डाला जो विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने तीन प्रकार के पदार्थ माने हैं जिन्हें तत्व त्रय भी कहा जाता है .. '।१। अचित् ।२। चित् और ।३। ईश्वर। ईश्वर विश्व का निर्माता और उपादान है और समस्त प्रकृति का नियंता माना जाता है। चित् एवं अचित दोनों ईश्वर पर उसी प्रकार आश्रित है जिस प्रकार आत्मा पर शरीर। इसीलिए चित् और अचित् दोनों को ही ईश्वर का शरीर कहा जाता है। परमात्मा के दो रूप हैं ।१। कारण रूप ।२। विश्व रूप।
' यह परमात्म रूप अथवा कारण रूप ईश्वर सर्व नियन्ता और सर्वान्तर्यामी है इसलिए भगवान् को ईश्वर और सेव्य बतलाया गया है, तथा जीव को दास

और सेवक । परमात्म रूप और विश्व रूप के अतिरिक्त भक्त वत्सल भगवान भक्तों के लिए समय समय पर अन्य पाँच प्रकार की मूर्तियाँ धारण किया करते हैं . अर्चा , विभव , व्यूह , सूक्ष्म और अन्तर्यामी ।[1] इनके प्रतिपादिक को अर्चा कहते हैं , मत्स्य , वाराह , कूर्म आदि आवतारों का नाम विभव है , वासुदेव बलराम प्रद्युम्न , अनिरूद्ध आदि व्यूह है : विरज , विशोक बिमृत्यु विजिघत्स , सत्यकाम और सत्य संकल्प ।षड्गुणशाली । परब्रह्म का नाम सूक्ष्म है और सब जीवों की नियन्ता मूर्ति विशेष का नाम अन्तर्यामी है ।[2] भगवान् की पूजा को ही इज्या कहा जाता है और मंत्र जाप एवं स्तोत्र पाठ स्वाध्याय के अन्तर्गत आता है । आगे चलकर रामानंद ने उपर्युक्त सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए लक्ष्मी नारायण के स्थान पर सीताराम की उपासना प्रचलित की । उन्होंने विष्णु के समस्त अवतारों में राम को ही अधिक महत्व दिया और प्रत्येक मनुष्य राम की भक्ति का अधिकारी घोषित किया । रामानंद द्वारा प्रवर्तित उपासना दास्य भाव की है । इसके परम आलम्बन रूप हनुमान जी है अत: सीताराम की उपासना के साथ साथ उनकी भी उपासना चल पड़ी । इस प्रकार रामानुज ने लोक की दो पुरातन भाव धाराओं के सामञ्जस्य विधान द्वारा विशिष्टाद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा की ।[3] इस सम्प्रदाय के विषय में श्री रामदास गौड़ ने लिखा है ..ब्रह्मसूत्र में आचार्य आश्यरूप का नाम मिलता है जो विशिष्टाद्वैत वादी थे । विक्रम की पाँवी शताब्दी में आचार्य श्रीकृष्ण ने ब्रह्मसूत्र की शिव परक व्याख्या करके विशिष्टाद्वैतवाद का विशेष रूप से प्रचार किया था । आचार्य भास्कर ने भी भेदा भेद के द्वारा एक तरह से विशिष्टाद्वैत को ही पुष्ट किया था , पांच रात्रमत भी एक तरह से विशिष्टाद्वैत मत ही था । परन्तु ब्रह्म सूत्र की विष्णु प्रक व्याख्या नये ढंग से विक्रम की दशवीं शताब्दी से शुरू हुई । यामुनाचार्य ने अपने अलौकिक पांडित्य के बल पर विशिष्टाद्वैत को

---

१. दे० सर्वदर्शन संग्रह

२. दे० कु० चन्द्रप्रकाशसिंह .. मध्यकालीन ~~धार्मिकवाद~~ परम्परा पृ० १२६ और भारतेन्दु

३. वही

नया आलोक प्रदान किया और उसके बाद बारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने तो विशिष्टाद्वैत मत का मानो सारे देश में समुद्र ही बहा दिया।[1] गो० तुलसीदास सहजराम आदि के स्तोत्रों मे विशिष्टादैत का बड़ा सरस एवं उदात्त प्रतिफलन हुआ है।

२. माध्व सम्प्रदाय : इसका आविर्भावकाल रामानुजाचार्य के पश्चात् माना जाता है। इन्होंने शंकर के मायावाद और अद्वैत का खंडन करते हुए विष्णु की प्रधानता पर द्वैत सिद्धान्त की स्थापना की थी। इस सम्प्रदाय में परमात्मा सब प्रकार से पूर्ण और नित्य है। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है .. माध्व सम्प्रदाय द्वैताद्वैत कहलाता है। उनके मतानुसार परमात्मा अर्थात् विष्णु अनंत गुण युक्त है। उसके गुण निरवधि और निरतिशय हैं, जिनमें सजातीय और बिजातीय दोनों प्रकार की अनंतता है परमात्मा उत्पत्ति, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्धन और मोक्ष इन सबका कर्ता है ज्ञान, आनंद आदि कल्याणकारी गुण ही उसके शरीर हैं। लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति है। वह परमात्मा के ही केवल अधीन रहती है। विष्णु और लक्ष्मी अभिन्न नहीं हैं।[2] भगवान् के अनुग्रह से ही मोक्ष लाभ होता है। परन्तु इसके लिए उसे अपनी प्रेम भावना कभी तो न प्रदर्शन करना पड़ता है। प्रकृति तथा अविद्या का बंधन भगवान् की कृपा से ही दूर हो सकता है। आगे चलकर माध्व सम्प्रदाय का विकास गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के रूप में हुआ। जिसका दार्शनिक मतवाद अचिंत्य-भेदाभेद कहा जाता है। माध्व संप्रदाय और गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय दोनों की आचार्य-परंपरा एक है, इसलिए दोनों को एक साथ माध्व गौड़ेश्वर संप्रदाय के नाम से भी अभिहित किया गया है। चैतन्य संप्रदाय के प्रसिद्ध नाम ग्रंथ (सम्प्रदाय बोधिनी) में इस परंपरा का उल्लेख इस प्रकार किया है :

> नारायण के विधि भये तिनके नारद जान।
> तिनके वेद व्यास जू राचे महापुरान ।।

---

१. दे० रामदास गौड़ .. हिन्दुत्व पृ० ६४२ ..६४३

२. दे० डा० नगेन्द्र .. देव और उनकी कविता पृ० १८६

तिनके मध्वाचार्य जू भाष्यकार निरधार ।
भक्ति तत्व अतिसु दृढ किय मायावाद कुठार ।।
पदनाम तिनके भये नर हरि तिनके दास। ~~तिनके माधव~~
तिनके माधव जानिये तिनके छौम प्रकास ।।
जय तीरथ तिनके भये बानी परम पवित्र ।
कहि टीका विजयध्वजी श्री भागौत विचित्र ।।
ज्ञान सिंधु तिनके भये तासु महानिधि धन्य ।
तिनके विद्यानिधि भये गुरू गोपाल अनन्य ।।
तिनके भये राजेन्द्र जू तिनके भये जय धर्म । ~~तिनके~~
तिनके पुरूषोत्तम भये भजन बिना नहिं कर्म ।
तिनके भये ब्रह्मण्य जु तिनके तीरथ कास ।
तिनके लक्ष्मीपति भये माधवेन्द्र विश्वास देव ।।
तिनके ईश्वर चन्द जू नीकी विधि करि सेव ।
जगसिक्षा हित जगतगुरू जिनहि कियौ गुरूदेव ।।
महाप्रभु चैतन्य कौ प्रथमाहि नीमा नंद ।
नाम प्रगट पाछैं चली पर चली निरद्वन्द ।।
प्रथम चलनि याकी कहूँ ब्रह्म सम्प्रदा नाम ।
मध्वाचार्य पर्यन्त सब संत न कह्वौ गुनग्राम ।।[1]

चैतन्य महा प्रभु ने रामानन्द के पश्चात जिस महान् भक्ति-आंदोलन का प्रवर्त्तन किया वही गौड़ी व वैष्णव संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसके दार्शनिक पक्ष का विवेचन अचिंत्य भेदाभेदवाद कहलाया। अनन्य रसिक शिरोमणि माध्वगौड़ीय आचार्य गोस्वामी हरिराम व्यास ने अपने 'नवरत्न' नामक ग्रंथ में उन नौ प्रमेयों का विशद् वर्णन किया है जो माध्व और गौड़ीय दोनों संप्रदायों में समान रूप से स्वीकृत हैं :

---

१. दे० कृष्णदास .. नित्य क्रिया पद्धति ।

यान्यार्यो नवरत्नानि प्रमेया रायाईदस: प्रभु: ।
श्री मध्वस्तत्ववादीन्द्र स्तानि मे संमतानि हि ।।
हरि: परतम: सत्यं जगदेस्तु तात्विक : ।
जीवा: श्री विष्णु दासास्त वार तम्यं परस्परं ।।
मुक्ति हरि पद प्राप्ति स्तद्धेतु भक्ति रूत्तमा ।
प्रत्यक्षा दित्रयं मानं वेद वै घस्तु माधव: ।।

अर्थात् हरि परम सत्य है , जगत सत्य है और दोनों में वास्तविक नित्य भेद है । जीव श्रीकृष्ण का दास है । उनमें परस्पर सम्बंध है । श्री हरिचरण की प्राप्ति ही मुक्ति है । इसके लिए उत्तम भक्ति , प्रत्यक्ष अनुमान तथा श्रुतियां प्रमाण स्वरूप हैं ऐसा वेदों में लिखा है ।

डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इस सम्प्रदाय के विषय में लिखा है : इस सम्प्रदाय के मतानुसार परम तत्व एक है । वह तत्व सच्चिदानंद स्वरूप अनंत शक्ति से सम्पन्न तथा अनादि है । जैसे रूप रसादि गुणों का आश्रय एक पदार्थ दुग्ध , पृथक पृथक इन्द्रियों द्वारा पृथक पृथक रूप में दिखाई देता है उसी प्रकार एक ही पर महत्त्व उपासना भेद से अलग अलग प्रकार से अनुभूत होता है ।[१.] इस मत मे जगत को सर्वभूत पदार्थ माना जाता है और इसी आधार पर ब्रह्म के अचिंत्य रूप की कल्पना की जाती है । डॉ० नगेन्द्र ने इसके समर्थन में लिखा है — चैतन्य मत में जगत सर्वथा सत्यभूत पदार्थ है क्योंकि वह ब्रह्म का ही माया शक्ति का बिलास है । परन्तु चूंकि ब्रह्म की शक्ति अचिन्त्य है , इसलिए न तो यह विश्व उसके साथ नितांत भिन्न ही प्रतीत होता है और न सर्वथा अभिन्न ही । ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति के साथ इसी भेदाभेद सम्बंध के कारण चैतन्य का मूल सिद्धान्त अचिंत्य भेदाभेद कहलाता है । भगवत प्राप्ति का वास्तविक साधन भक्ति ही है और भक्ति में चूंकि संवित तथा ह्लादिक शक्तियों का सम्मिश्रण रहता है , इसलिए भक्ति एक प्रकार से भगवद्रूपिणी ही है ।[२.]

---

१. दे० डा० दीनदयालु गुप्त .. अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० १५६
२. दे० डा० नगेन्द्र .. देव और उनकी कविता पृ० १२७

* भगवान् श्रीकृष्ण अपने तीन रूपों में तीन धामों में निवास करते हैं :

इति धाम त्रये कृष्णो विहरत्मेव सर्वदा ।

तत्रा पिगो कुले तस्य माधुरी सर्वं तोऽधिका ।।

.. लघु भागवतामृत पृ० १५४

मधुर भाव की रीति तीन प्रकार की मानी जाती है :

।१। साधारणी रति ।२। समञ्जसारति ।३। समर्थी रति

प्रथम का उदाहरण कुब्जा है । इस भक्ति से भगवान् का मथुरा धाम का रूप जाना जा सकता है । ऐसे भक्त भगवान् से प्रेम और सेवा अपने आनंद लाभ के लिए करते हैं । यह काम रूपा भक्ति कही जाती है । दूसरी का उदाहरण रूक्मिणी , जामवन्ती आदि राज महिषियां कही जा सकती हैं । इस भावना वाले रति की भावना अपने जीवन का धर्म समझकर करते हैं । ऐसे भक्तों को द्वारिका रूप मिलता है । तीसरे का उदाहरण ब्रज गोपिकायें हैं जिस भाव को धारण कर भक्त भगवान् से प्रेम और सेवा आनंद के लिए करते हैं । इसमें शास्त्र-मर्यादा का ध्यान नहीं है । यदि प्रभु की सेवा के लिए मर्यादा का भी उल्लंघन करना पड़े तो भक्त इसकी चिंता न करेगा । यही भाव चरम ही उत्कर्ष प्राप्त कर 'राधा' भाव में परिणत हो जाता है । इस मत का प्रचार बंगाल में अधिक हुआ है । इसके अधिकतर ग्रंथ संस्कृत और बंगला में उपलब्ध होते हैं । परन्तु इधर हिन्दी में भी विशाल साहित्य प्राप्त ~~हुआ~~ हुए हैं जिनमें इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है । अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की भांति ही इसमें भी सत्संग , लीला , कीर्तन , नामजद कृष्ण मूर्ति की सेवा आदि पर बल दिया गया है । इस संप्रदाय के उपलब्ध सहित्य में मधुरभाव की प्रधानता है और भगवती राधा देवी के स्तोत्रों की संख्या सर्वाधिक है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय

निम्बार्काचार्य जी इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे । कहा जाता है कि वे जाति के तैलंग ब्राह्मण थे और उनका जन्म बैल्लरी जिले के निम्बपुर ग्राम में हुआ

हुआ था । एक बार उन्होंने एक निम्ब वृक्षपर सुदर्शन चक्र का आवाहान किया था । एक और इनके यहाँ आए हुए अतिथियों ने उसे सूर्य समझकर भोजन कर लिया था । इस घटना के पश्चात् उनको नाम निम्बार्काचार्य पड़ गया । इसके पूर्व इनका नाम नियमानंद था । 'इनका मत ' द्वैताद्वैत वाद कहलाता है । इनकी दृष्टि में जीव और जगत का ब्रह्म के साथ द्वैत , अद्वैत दोनों प्रकार से सम्बंध है । बलदेव उपाध्याय ने उसे इस प्रकार स्पष्ट किया है .. है उनकी सम्मति में जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी ।' [1]. इस प्रकार इस मत में द्वैताद्वैत या भेदाभेद का समर्थन किया गया है । और साथ ही साथ प्रत्येक मुक्त आत्मा परस्पर भिन्नता रखते हुए भी परमात्मा से पृथक नहीं है तथा जीव ईश्वरात्मक और उससे अविभाज्य है । उन्होंने ब्रह्म की तीन शक्तियां मानी हैं :

।१। जीवाख्या शक्ति

।२। जीवाख्या शक्ति

।३। मायाख्या शक्ति

ईश्वर को प्रेरक तथा जीव को प्रेमवान और जीव को भी मुक्त जीव एवं बद्ध जीव नामक दो प्रकार का माना गया है : —

अनादिमाया परियुक्त रूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत् प्रसादात् ।
मुक्तं च भक्तं किल बद्ध मुक्त प्रादि बाहुल्य यथापि बाध्यम् ।

चूंकि जीवि अंश और ब्रह्म अंशी है । अत: जीव सदैव ज्ञानादि की प्राप्ति के लिए ईश्वर पर आश्रित रहता है ।

इस प्रकार इस मत में भगवत् सेवा , भक्ति और उनकी कृपा द्वारा प्राप्त मुक्ति को ही इष्ट फल कहा गया है । निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म माना गया है श्रीकृष्ण को ऐश्वर्य तथा माधुर्य दोनों का आश्रय कहा जाता है । वह महा पुरूष है । उनके विषय में निम्बादित्य दशश्लोकी में लिखा है :

१- डॉ॰ बलदेव उपाध्याय   भारतीय दर्शन पृ॰ ४८७

"उपास्यस्य कृष्ण स्वामिनो रूपं सच्चिदानंद विग्रहं
स्वमहिम संकोम पुर शब्द दित ब्रजादि नित्य पद स्थितं
ब्रजे द्विभुजं गोपवे षं द्वाबर्वत्मा चर्तुभुजं च सावज्ञय
सार्वेश्वर्य सर्व कारणत्व सर्व शक्तितत्त्व सौहार्द मार्दव
कासविकत्वादि गुणरत्ना करं भक्त वत्सल मित्येत तु ।"

महारानी राधा एवं गोपियों से परिवेष्ठित भगवान् श्रीकृष्ण इस सम्प्रदाय के उपास्यदेव हैं । अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में भगवत्कृपा का फल प्रभु शरण ही माना गया है उसी प्रकार इस मत में भी उसकी प्रधानता है ।

इस सम्प्रदाय में निकुंज-लीला को अधिक महत्त्व दिया गया है । इसमे सुर , असुर , जीव आदि के प्रवेश की आज्ञा नहीं है केवल नित्य सिद्ध सेवक ही उसके अधिकारी हो सकते हैं । इस लीला में तीन अवस्थायें मानी गई हैं । "पहली अवस्था वह है जहां सविशेष सगुण ब्रह्म निज निकुंज में नित्य संयुक्त रूप में रहते हैं , जहां मान विरह और भ्रम कुछ नहीं होता , निर्विकार शान्त श्रृंगार की अविरल अबोध धारा प्रवाहित रहती है । दूसरी अवस्था वह है जिसमें प्रकाश रूप से युगल मूर्ति अपनी सखियों नित्य सिद्ध परिकरों को सुख देने के लिए निकुंज से बाहर निकलते हैं और उनके साथ रास करते हैं । यहां प विरह नहीं होता है पर मान औरस भ्रम होता है । तीसरी अवस्था वह है जिसमें नंद गाँव और बरसाने की लीलाएं होती हैं ।"[1] निम्बार्क मत के ~~अनुकामियों~~ अनुयायी हित हरिवंश , हरिदास तथा हरिव्यास आदि महात्मा नित्य निकुंज के नित्य रस की उपासना करते थे । आज भी राधावल्लभ सम्प्रदाय, टट्टी सम्प्रदाय आदि में नित्य निकुंज ~~के नित्य रस की उपासना करते थे । आज भी राधावल्लभ सम्प्र~~ रस की उपासना होती है । निम्बार्क सम्प्रदाय भी निकुंज लीलाओं में ~~छेदम~~ " अधिक प्रचलित है । इस सम्प्रदाय के रास में कृष्ण को मुकुट बाईं ओर को कुछ झुका रहता है जो राधा जी की प्रधानता का प्रतीक है, जबकि बल्लभ सम्प्रदाय में मुकुट दाईं ओर को झुका रहता है। कुछ विद्वानों का मत है कि भक्तिकालीन कवियों के

---

१. डॉ० कु० चन्द्रप्रकाशसिंह .. हिन्दी नाट्य-साहित्य और रंगमंच की मीमांसा पृ० ७०

अतिरिक्त रीति काल के बिहारी, घना नंद और देव आदि भी इस मत के अनुयायी थे ।

निम्बार्क मत में प्रेमा भक्ति को दास्य सख्य, वात्सल्य, शान्त, उज्ज्वल आदि भावों से पूर्ण माना गया है और उज्ज्वल रस को स्थान दिया गया है । इस कहा जाता है कि राधाकृष्ण की उपासना की ओर सर्व प्रथम इन्हीं का ध्यान गया था ।

रामानुज की भांति इन्होंने भी शरणागति को अधिक महत्व दिया है । इस मत में राधा को प्रधानता दी गई है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उत्तरी भारत में राधा कृष्ण की भक्ति का शास्त्रीय रूप निम्बार्काचार्य ने ही उपस्थित किया था । डा० नगेन्द्र ने इस सम्प्रदाय के विषय में अपना भाव इस प्रकार व्यक्त किया है : .. "उन्होंने सगुण ब्रह्म की ही प्रतिष्ठा की है । उनके अनुसार ब्रह्म अविद्यादि समस्त प्राकृत दोषों से मुक्त अशेष कल्याण गुणों की राशि है, स्वभाव तो ऽपास्त समस्त दोष मय शेष कल्याण गुणैक राशिम् । "इस जगत में जो कुछ दिखाई देता है या सुना जाता है, नारायण उसके भीतर बाहर सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित है चिद् चिद् रूप विश्व नियम्य तथा परतंत्र है और ईश्वर आश्रित है । परब्रह्म नारायण, भगवान कृष्ण, पुरूषोत्तम सभी परमात्मा को विभिन्न नाम हैं । जीव ब्रह्म में भेदाभेद सम्बंध है ।"[१] आगे चलकर इस सम्प्रदाय में बड़े बड़े आचार्य हुए । उनमें श्री केशव भट्ट, श्री श्रीभट्ट, श्री हरि व्यासदेव, श्री परशुराम देवाचार्य, श्री स्वामी हरिदास जी आदि प्रमुख है । इस मत के अनुयायी कवियों ने जो विपुल साहित्य लिखा है उसमें राधा कृष्ण विषयक स्तोत्रों स्थान गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय

उपर्युक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त कुछ उपासना पद्धतियां भी प्रारम्भ हो गई थी जिनमें "राधावल्लभ सम्प्रदाय" प्रमुख है । इसके प्रवर्तक हित हरिवंश जी

---

१. डा० नगेन्द्र .. देव और उनकी कविता पृ० १२७

है। पहले ये निम्बार्क मत के अनुयायियों में थे परंतु स्वप्न में राधा जी से प्रेरित होकर 'राधवल्लभ' नायक अपना पृथक सम्प्रदाय चलाया और वृन्दावन में 'राधावल्लभ' की मूर्ति स्थापित करके वहीं विरक्त भाव से रहने लगे। डा० रामकुमार वर्मा ने इस सम्प्रदाय की उपासना पद्धति के विषय में लिखा है 'इस सम्प्रदाय में राधा का स्थान कृष्ण से ऊँचा है और भक्त गण कृष्ण का अनुग्रह राधा का पूजन करके ही प्राप्त करते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय ने राधा को महत्वपूर्ण पद दिया किंतु राधा वल्लभी सम्प्रदाय ने राधा को सर्वश्रेष्ठ पद प्रदान किया।'[1] इनके द्वारा रचे हुए संस्कृत ग्रंथों में : प्रमुख हैं।

।१। श्री मद्राधा सुधानिधि

।२। श्री आशा स्तव

।३। चतु: श्लोकी

।४। श्री यमुनाष्टक स्तोत्र

।५। राधातन्त्र

इनमे हिन्दी के स्फुट पदों का संग्रह 'हित चौरासी' नाम से हुआ है। इसमें उन्होंने कर्म और ज्ञान के साधनों का खंडन और प्रेमा भक्ति को महत्व दिया है। इस सम्प्रदाय में 'राधाकृष्ण' की उपासना का मुख्य स्थान है। इस सम्प्रदाय में भी निकुंज लीला को विशेष स्थान दिया गया है और छद्म की प्रधानता है। निम्बार्क एवं राधावल्लभ सम्प्रदाय दोनों के ही मतानुयायी यह मानते हैं कि आस्वाधर्मी राधा और आस्वादक श्री कृष्ण हैं। इसीलिए कृष्ण अनेक छद्म रूपों में राधा के साथ विहार करते हैं। 'रास छद्म विनोद' एवं वयालिस लीलायें छद्मधारण करने का वर्णन है।

अपनी काव्य रस माधुरी के कारण ये कृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते हैं और इसमें संदेह भी नही क्योंकि इनकी कोमल वर्ण-योजना अत्यंत ही मधुर है।

---

१. डा० रामकुमार वर्मा ..हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ८७

इनकी उपासना निम्नलिखित में का स्पष्ट विवेचन हुआ है :

तनहि राखु सतसंग में , मनहि प्रेमरस भेव ।
सुख चाहत हरिवंश हित , कृष्ण कल्पतरु सेव ।
सब सों हित निहकाम मन , वृन्दावन विश्राम ।
राधावल्लभ लाल को , हृदय ध्यान मुख नाम ।

हित हरिवंश जी के अन्य शिष्यों में हरिराम व्यास श्री भट्ट रसिकदास एवं ध्रुवदास मुख्य हैं । हरिराम व्यास की 'रास पंचाध्यायी' एवं ध्रुव दास जी के सिद्धान्त विचार , रसरत्नावली , ब्रजलीला , दान लीला तनविहार , रस विहार आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं । इस संप्रदाय के प्रवर्तक हित हरिवंश के लिखे हुए हित चौरासी ' नाम से प्रसिद्ध पद ब्रजभाषा काव्य की परमोपलब्धि माने जा सकते हैं । इनमें से अधिकांश पद स्तोत्रों की सुषमा , ~~भक्ति~~ गीणा एवं समर्पण की भावना से मंडित है ।

<u>टट्टी सम्प्रदाय</u> । सखी सम्प्रदाय ।

इसके प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे । राधावल्लभीय सम्प्रदाय की भाँति यह भी एक स्वतंत्र उपासना पद्धति थी । इसमें 'राधाकृष्ण' की युगल उपासना 'सखी भाव से की जाती है । भक्तमाल में नाभादास जी ने लिखा है :

जुगल नाम सों नेम जपत नित कुंज बिहारी ।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी ।
गानकला गन्धर्व स्याम स्यामा कों तोषै ।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषै ।

..भक्तमाल ..भक्तिमाल
सुधास्वाद रूपकला पृ० ६०७

प्रारम्भ में स्वामी हरिदास जी निम्बार्क मतानुयायी थे बाद में अपनी स्वतंत्र उपासना पद्धति चलाई । इस सम्प्रदाय में भी निकुंज

लीला की उपासना होती है । इनके दो ग्रंथ मुख्य हैं १.साधारण सिद्धान्त , २. रास के पद । सिद्धान्त ग्रंथ में भक्ति पद्धति का विवेचन है परन्तु उसमें दार्शनिक वादों का प्रतिपादन नहीं किया गया है । अन्य संग्रहों में हरिदास जी की बानी , हरिदास जी को ग्रंथ , हरिदास जी के पद । इन संग्रहों के पदों की भाषा ब्रज है तथा भक्ति भाव के साथ साथ काव्य गुण सम्पन्न है । हरिदास जी के अन्य शिष्यों में श्री विहारिनीदास जी , श्री भगवत रसिक जी , श्री ललित किशोरी जी आदि हैं ।

४. रुद्र सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का प्रवर्तन विष्णुस्वामी के द्वारा किया गया था । कुछ विद्वान् विष्णु स्वामी का समय वि० ए० ६०० वर्ष पूर्व मानते हैं ।[१] कहा जाता है कि विष्णु स्वामी द्रविड़ देश के किसी क्षत्रिय राजा के ब्राह्मण मंत्री के पुत्र थे । यह मंत्री अपनी प्रतिभा और नीति ज्ञाता के लिए अत्यंत प्रसिद्ध रहा । विष्णु स्वामी के मन में अपने पिता से अधिक कीर्ति प्राप्त करने की अभिलाषा जाग्रत हुई और भगवत्साक्षात्कार ही उन्हें इसका एक मात्र उपाय प्रतीत हुआ । अतएव उन्होंने अन्नजल का परित्याग कर भगवान की परिचर्या में अपने आपको नियोजित कर दिया । अंत में उनकी कठोर तपश्चर्या एवं हठनिष्ठा से प्रभावित होकर भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया । "सन्तं वयसि कैसोरे"[२] इत्यादि श्लोकों में जिस प्रकार ~~भगवद्विग्रह~~ भगवद्विग्रह का वर्णन

---

१. सम्प्रदाय प्रदीप द्वितीय प्रकरण पृ० २३

२.सन्तं वयसि द्विभुज पीतवास सम् । नवीन नीरद श्यांम पद्मगर्भा रूणेक्षणम् ।।१।।
रुचिरोष्ठ पुटन्यस्त वेणुवादन तत्परम् ।शिखि पिच्छवतं सेन शोभितं वनमालया ।२।
हारकंकण केयूर मुद्रिका भिरलंड् कृतम् । सुन्दरं निम्नमिञ्चहेम मेखलया पुतय ।।३।।
स्फुरन्नूपुर झंकार वीरं श्री रसिकं मुदा । कल्पित द्वयूष्ट श्रृंगार रसमूर्तिं मनोरमम्।४
पीतोत्तरीय संवीतं त्रिभंगिं ललिता कृतिम् । गल्ल मण्डल संसर्गि लसंत्काञ्चन कुण्डलम ।५
तुंग गुल्फारूण नख व्रात दीधि तिमिश्चितम् ।पाणि पादत ले पदम पत्रारूणं तया ऽन्वितम् ।६।
सव्यं दक्षिण तो देव्यौ तप्त काञ्चन सन्ति मैं ।
वयो रूप गुणोषेते दृष्ट् बोवा च मुदान्वित: ।।७।।

सम्प्रदाय प्रदीप पृ० १८ , १६

है उसी प्रकार किशोरा कृति वेणु वादन तत्पर , नवीन नीरद श्याम ,श्रृंगार मंडित: रस मूर्ति , मनोरम त्रिभंग ललिता कृति भगवान् के भव्य स्वरूप के साथ ही ताम दक्षिण भाग स्थित तप्त सुवर्णतरी धारिणी , वयो रूप गुणो पते श्री रूप्क रूपिणी देव-देवियों के भी नयनाभिराम दर्शन कर विष्णु स्वामी कृतकृत्य हो गए , आज इनकी चिरसंचित अभिलाषा फलवती हुई । कहा जाता है कि इसके पश्चात् भगवान् ने वि विष्णु स्वामी को अपनी परात्परता का निर्देशन करवाया और उन्हें भक्ति तत्व का उपदेश करते हुए बताया कि किसी भी शास्त्रोक्त ज्ञान प्रधान अनुष्ठान की अपेक्षा भक्ति की शुद्ध सात्विक प्रेम भाव भक्ति कहीं अधिक उच्च कक्षा की होती है । भगवान् ने विष्णु स्वामी के प्रति वेद भागवत , गीता आदि शास्त्रों के वास्तविक रहस्य को प्रकट किया । इस प्रकार भगवत्साक्षात्कार से प्रेरणा प्राप्त कर विष्णुस्वामी ने अपना जीवन भक्ति के प्रचार के लिए अर्पित कर दिया । उन्होंने । कृष्णतबास । इस पंचाक्षर मंत्र के जप का उपदेश दिया और यशोदा गोपिका तथा उद्धवादि के समक्ष भगवान् की सुश्रूषा करने का सेवा मार्ग लोगों को बतलाया । विष्णु स्वामी ने अपने जीवन भर भक्ति मार्ग का प्रचार किया । इन्हीं के सम्प्रदाय में आगे चलकर विल्व मंगल नाम के अत्यंत यशस्वी आचार्य हुए जिन्होंने मायावाद का खंडन करते हुए विष्णु भक्ति स्वामी द्वारा निरूपित भक्ति मार्ग का प्रचार किया ।

कहा जाता है कि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी द्रविड़ देशीय आचार्य विल्वमंगल से प्रेरणा प्राप्त कर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का नेतृत्व ग्रहण किया । अभीतक विष्णु स्वामी सम्प्रदाय में मर्यादामार्गीय आत्म निवेदनात्मक भक्ति का प्रचार चला आरहा था । वल्लभाचार्य ने इस भक्ति मार्ग का संशोधन किया और पुष्टि मार्गीय प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रचार किया । वल्लभाचार्य जी ने उसमें गुरू सेवा , भागवतार्थ भगवत्स्वरूप निर्णय , सेवा तथा निरपेक्षता आदि अन्य पांच सिद्धान्त सम्मिलित किए । इन पांचों सिद्धान्तों की विशेषता इ से भक्ति मार्ग का उत्कृष्टा का अनुभव किया जा सकता है ।

उन्होंने उपनिषद , गीता और श्रीमद्भागवत की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जिसके द्वारा शंकर के मायावाद का खंडन किया गया और शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद की स्थापना हुई। वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवर्तित भक्ति मार्ग अपनी सैद्धान्तिक विशेषताओं के कारण शुद्धाद्वैत कहलाता है और क्रिया पक्ष की विशेषताओं के कारण पुष्टिमार्ग के नाम से अभिहित किया जाता है। वल्लभाचार्य के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण की परम तत्व , परमब्रह्म एवं पूर्ण पुरूषोत्तम है। वही इस जगत का कर्ता धर्ता और हर्ता है। वही महापुरूष है और उसी की उपासना और भक्ति जीव का महान कर्तव्य है। उसकी शरण में जाने पर जीवों को वास्तविक श्रेय एवं प्रेय प्राप्त होता है। जब भक्त हृदय की सात्विक भाव भक्ति उपस्थित करता है तभी उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। भक्ति तथा धर्म के आचरण ज्ञानार्थ गीता भागवत आदि शास्त्र प्रमाण स्वरूप और सर्व शास्त्र सार रूप हैं। आत्म निवेदन कर भक्तिपूर्वक यथा शक्य प्रभु सेवा ही भक्त का मुख्य कर्तव्य है। संसार की असारता का त्याग करके ही भक्त ब्रह्म में लीन होता है और वास्तविक दशा को प्राप्त होता है। इसी को मुक्ति कहा गया है। मर्यादा मार्ग से तो ज्ञानी को अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है। इसके द्वारा केवल सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है , हार्दिक आनंद नहीं।

पुष्टिमार्ग में सेवा भाव की प्रधानता है। भक्त को शुद्ध हृदय से सब प्रकार के माया मोह को भुलाकर प्रभु सेवा में रत रहना चाहिए। सेवा से ही रसात्मक आनंद का अनुभव किया जा सकता है। 'पुष्टि' का अर्थ है 'पोषण'। भक्त प्रभु की कृपा का आकांक्षी है। पूजन , आराधन कीर्तन आदि करके उत्कृष्ट सुख के सन्निकट पहुँचा जा सकता है। स्थल स्थल पर वल्लभाचार्य जी का उद्देश्य पुष्टिमार्ग तथा शास्त्रार्थ द्वारा शुद्धाद्वैत मत का प्रचार करना था। विष्णु स्वामी की भक्ति मर्यादा मार्गीय है यद्यपि उसमें आत्म निवेदनात्मक भक्ति की स्थापना की गई है परन्तु आचार्य वल्लभ ने पुष्टि

-अनुग्रह - मार्गीय आत्म निवेदन द्वारा प्रेम स्वरूप निर्गुण भक्ति का प्रचार किया है। उन्होंने शुद्धाद्वैत वाद के मंडन के लिए सैकड़ों ग्रंथों की रचना की और भागवत प्रवचन, शुद्धाद्वैत मत स्थापन तथा भक्ति की सुरसरिता बताकर समस्त आर्यावर्त को आप्लवित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने सिद्धान्त की सत्यता एवं दृढ़ता पर भगवान शंकर को साक्षी बनाकर निम्नलिखित श्लोक लिखकर मंदिर के द्वार पर लगवा दिये थे।

'श्रीकृष्णस्य प्रसादेन मायावादी निराकृ।
अवैदिको महादेवस्तंत्र साक्षी न संशय ।।
ये वैदिका महात्मान स्तेषां चानुमिति स्तया।
अवेद विन्न मनुते मया पोपे क्षित: पुन: ।।
स्थापितो ब्रह्मवादो ह्सिर्व वेदान्त गोचर: ।
काशीपति स्त्रि लोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु ।।[1]

उनका 'पुष्टि मार्ग' शास्त्र सम्मत है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इस विषय में अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त किया है .. 'पुष्टि मार्ग के आचार्यों के का कहना है कि इस मार्ग के समस्त सिद्धान्त जिनका प्रचार श्री वल्लभाचार्य जी तथा श्री विट्ठलनाथ जी ने किया था वेद, उपनिषद, श्रीमद्भागवत गीता, ब्रह्मसूत्र तथा अन्य अविरोधी शास्त्रों के प्रमाणों पर प्रतिपादित है।[2] श्री वल्लभाचार्य जी ने चार प्रमाण माने हैं इनको इस सम्प्रदाय में ~~प्रस्थान~~ प्रमाण चतुष्टय कहा जाता है :

वेद: श्री कृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैवहि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ।।
एत दिसैद्ध पत्सर्व न तन्मानं कथं चन ।।[3]

---

१. संप्रदाय प्रदीप पृ० ७० ,७१
२. डा० दीनदयालु गुप्त .. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ३६७
३. शास्त्रार्थ प्रकरण श्लोक ७ ,६

मक्ति से समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ सेवारत हो जाती हैं और उनका कार्य भगवदर्थ ही होता है । इसका स्पष्टीकरण बल्लभाचार्य जी के `निरोध लक्षण ` ग्रन्थ से सरलता से हो जाता है । उनके `प्रस्थान चतुष्टम ` के सिद्धान्त में नाम रूपात्मक सृष्टि सत्य नित्य है । क्योंकि दोनों के सर्वविध करण भगवान् हैं । उभयविध सृष्टि का आविर्भाव और तिरोभाव होता है, उत्पत्ति और नाश नहीं । मायाकृत अविद्या से उत्पन्न `अहन्ता ममतात्मक` संसार मिथ्या है । प्रपंच और संसार पृथक पृथक वस्तु है । प्रपंच को मिथ्या, मायामय, स्वर नमय बतलाने वाले वाक्यों का अभिप्राय जीव को वैराग्य उत्पन्न कराना है । जीव भगवदिच्छा से अविद्या बद्ध होकर संसार प्राप्त करता है ।[१] शास्त्रों के ज्ञान से यह निर्विवाद स्पष्ट हो जाता है ब्रह्म-प्राप्ति के साधन रूप कर्म ज्ञान तथा भक्ति में वल्लभ संप्रदाय में भगवान् कृष्ण के बाल रूप की उपासना होती है । इसलिए इस संप्रदाय के कवियों की रचनाओं में बाल कृष्ण विषयक बहु संख्यक स्तोत्र प्राप्त होते हैं । इस संप्रदाय के कवियों ने भगवान् कृष्ण की बाल चेष्टाओं एवं क्रीडाओं का भी बड़ा सूक्ष्म साथ ही विस्तृत वर्णन किया है । सामान्यत: जो लक्ष्य स्तोत्रों का होता है, वही लक्ष्य इन बाल लीलाओं के वर्णन का भी है । इसलिए यदि अष्ट छाप के कवियों तथा वल्लभ सम्प्रदाय के अन्य भक्तों के वात्सल्य वर्णन को स्तोत्रात्मक कहा जाय तो यह अनुचित नहीं । इन भक्त कवियों ने बालकृष्ण के नखशिख का बड़ा मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने रासेश्वर कृष्ण और वृन्दावनाधीश्वरी राधादेवी की शृंगार लीलाओं का भी वर्णन किया है । इन रचनाओं में स्तोत्रों के आधारभूत तत्व उपलब्ध होते हैं । इन

---

१. सम्प्रदाय प्रदीप .. पृ० ३४ / ३५

इन शृंगारिक रचनाओं में मधुर भाव की प्रधानता है। किंतु मधुर भाव चैतन्य सम्प्रदाय के भक्तों का उपास्य एवं आश्वाधरस है, वल्लभीय वैष्णव तो तत्वतः वत्सल रस के ही रसिक हैं। फिर उनकी रचनाओं में शृंगार का यह विस्तार क्यों ? इस विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि चैतन्य सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने मधुर भाव को विस्तार से अपनी कृतियों में स्थान दिया है। कुछ स अन्य विद्वानों का मत है कि इस प्रक्रिया में चैतन्य संप्रदाय का प्रभाव खोजना उचित नहीं। भगवान् कृष्ण की ब्रज लीलाओं के वर्णन के क्रम में इन लीलाओं का समावेश हो जाना सर्वथा अनिवार्य था। उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है जिस प्रकार भगवन्निवेदनात्मक भक्ति के द्वारा कर्म फल साधक होता है, उसी प्रकार भक्ति सम्बलित होने पर ज्ञान भी। भक्ति रहित केवल ज्ञान को 'तुषा ब घात' की उपमा दी गई है जो केवल क्लेश प्रद ही है।[1.]

वेदार्थ का निर्णय उत्तरोत्तर सन्देह वारक वेद-व्यास सूत्र गीता-भागवत प्रस्थान चतुष्टय की एक वाक्यता से अनायास ही हो जाता है। पुष्टिमार्गीय भक्तों का मत है कि इस प्रकार भक्त परम ब्रह्म के सच्चिदानंद स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। पूजा, कीर्तन आदि के द्वारा भक्त के हृदय में सच्चे रस की अनुभूति होती है। इसका समर्थन डा० नगेन्द्र ने इस प्रकार से किया है .. "मर्यादा मार्ग से ज्ञानी केवल अक्षर ब्रह्म को प्राप्त करता है, परन्तु पुष्टि के द्वारा भक्त परम ब्रह्म के अतिरोहित सच्चिदानंद स्वरूप को प्राप्त करता है। मर्यादा मार्ग भगवान् की वाणी से उद्भूत हुआ है। पुष्टि मार्ग उनके शरीर अथवा आनंद अंग से पहले का लक्ष्य सायुज्य मुक्ति है, दूसरे का रसात्मिका प्रीति के द्वारा भगवान् का अधरामृत पान। पहला सहेतुक होने के कारण पूर्ण आनंद मय नही है परन्तु दूसरा निर्हेतुक होने के कारण सर्वथा रसमय है।[2.] "

---

१. सम्प्रदाय प्रदीप श्लोक पृ० १८७

२. डा० नगेन्द्र ..देव और उनकी कविता पृ० १२६

बल्लभाचार्य के पश्चात् श्री गोपीनाथ और श्री पुरूषोत्तम जी के द्वारा इस सत् सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार हुआ उसके पश्चात् विट्ठलनाथ जी भगवत् सेवा शास्त्रोंपदेश तथा ग्रंथ रचना द्वारा इस भक्ति मार्ग की रक्षा और प्रचार करते रहे। आगे चलकर सूरदास एवं अष्ट छाप के भक्त कवियों के हिन्दी स्तोत्रों में इस पुष्टि मार्ग का अत्यंत ही सरस और उदात्त रूप प्रतिफलित हुआ है।

शैव तथा शाक्त मत

शैव और वैष्णव दर्शनों में ब्रह्म के विशेष रूप देने पर ही शक्ति की महत्ता का सूत्रपात हुआ। शैव दर्शन आगम को निगम के समान स्थान देकर प्रवृत्त हुए हैं। शंकर को पशुपति कहा जाता है जिसका अर्थ पापों को नष्ट कर निकाला परमेश्वर तीन नित्य पदार्थ माने जाते हैं .. पति, पशु और पाश। पति को ही परमेश्वर कहा जाता है और संसार का कारण है। जीव पशु है। पाश चार हैं : मल कर्म, माया, रोध शक्ति इसमे बद्ध जीव साधना से ब्रह्म की प्राप्त करता है। काश्मीर में अभिनव गुप्ताचार्य ने शैवदर्शन का जो रूप उपस्थित किया उसे प्रत्यभिज्ञादर्शन कहा जाता जिसका तात्पर्य शंकर का ज्ञान ही प्रत्यभिज्ञा है। शक्तित्व कीसमर्री ही मुक्ति का हल रती है जिसकी प्राप्ति कर्म एवं उपासना से होती। इस संसार से मुक्ति दो प्रकार की होती है :

१. दुःख की आत्म ग्लानि निवृत्ति
१. २. इच्छित वस्तु की प्राप्ति

व्रत, मत्स्यदि आदि इसके साधन माने जाते हैं। पराशक्ति त्रिपुरा सुंदरी से शब्द और वायु की उत्पत्ति मानी जाती है। शक्ति में ही शिव का तेजस रूप विद्यमान है। आराधना की दृष्टि से महाशक्ति के महाकाली, उग्रतारा, त्रिपुर सुंदरी, भुवनेश्वरी, छिन्न मस्ता, भैरवी, धूमावली,

बगलामुखी , ,मातंगी , कमला आदि नाम रक्खे गए हैं। इन शक्तियों के साथ आराध्य के दश रूपों की उपासना होती है। वे क्रमश: महाकाल , अक्षोम्य पुरूष , पञ्चवक्त्र रूद्र , त्र्यम्बक , कबन्ध , दक्षिणामूर्ति एकवक्त्र रूद्र मतंग , सदाशिव , और विष्णु। जीव जब आराधना से शक्ति को प्रसन्न करता है तभी उसे मुक्ति प्राप्त होती है।

शिव पुराण में उसे परमपरात्पर ब्रह्म कहा गया है और उसे ही शिव , विष्णु , शक्ति , राम , कृष्ण , गणेश आदि नामों से व्यक्त किया गया है। यह सभी रूप नित्यशाश्वत परमात्म स्वरूप हैं :

सर्वे नित्या: शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मन: ।
हानी पादानरहिता नैव प्रकृति जा: क्वचित् ।। : शिव पुराण :

सृष्टि के आरंभ में रूद्र देव को विद्यमान माना जाता है। वही इस जगत की सृष्टि करते हैं और अन्त में संहार भी करते हैं। शिव पुराण के शिव ही ब्रह्म हैं। विष्णु पुराण के विष्णु , श्रीमद् भागवत के श्रीकृष्ण , रामायण के श्रीराम , और देवी भागवत के दुर्गा वही हैं। शिव: विष्णु , शक्ति , सूर्य और गणेश एक ही परमात्मा के पांच स्वरूप हैं। त्रिदेव की जो कल्पना की गई है उसमें कभी वह शिव रूप में , कभी विष्णु या शक्ति रूप में उत्पन्न होता है।

ब्रह्मा , विष्णु और रूद्र में अभिन्नता है। उपासनातत्त्व के निर्देशन के लिए ही वे परस्पर उपासक एवं उपास्य का रूप निर्मित करते हैं :

हरि हरयो: प्रकृति रेका प्रत्यय भेदेन रूपभेदो यम् ।
एक स्यैव नटस्यनिक विधा भूमिका भेदात् ।।
शिव पुराण में `शिव` के मुख से कहलाया गया है
ममैव हृदये विष्णु विष्णोश्च हृदये ह्यहम् ।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतोयम ।।

।६।५५.५६ ।

अर्थात् मेरे हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में मैं विद्यमान हूँ । इन दोनों में अभेद समझने वाला ही मेरा प्रिय भक्त है । भगवान् नारायण ने लक्ष्मी जी से भी इसी रूप का वर्णन किया :

स एवाहं महादेव: स एवाहं जनार्दन: ।
उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थ थ जल योरिव ।

.. विष्णु पुराण

परात्पर ब्रह्म से ही आदि शक्ति की उत्पत्ति मानी जाती है । वही प्रकृति पुरुष है और ब्रह्मा , विष्णु , महेश आदि उसी के रूप हैं :

तस्यान्महेश्वरश्चैव प्रकृति: पुरुषस्तथा : ।
सदा शिवो भवो विष्णु ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम् ।।

। शिव० वा० सं० पू० । व० १०।६.

`पद्म पुराण ` में भगवान् परात्पर ने रामरूप में शिव के लिए कहा है :

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम् ।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढा: पश्यान्ति दुर्धिय: ।।

पद्म पाताल २८।२१.२३

शिव और शक्ति में अभिन्नता है । कभी वह शक्ति उसमें छिपी निष्क्रिय रहती है और कभी प्रकट होकर क्रिया करती है । दोनों का अविनाशी सम्बंध है :

एवं परस्परापेक्षा शक्ति शक्तिमयो: स्थिता ।
न शिवेन विना शक्ति र्न शक्तया बिना शिव: ।।

। शिव '० ~~किनान्शिव~~ वा य० सं० उत्तर ४।

जितने पुरुष हैं वे सब शिव हैं और उनकी सहधर्मिणी स्त्रियाँ शक्ति रूपा है । इसी के आधार पर `शिवपुराण `में शक्ति और शक्तिमान के प्रकट होने पर `शक्ति ` और `शैव ` कहलाया । शंकर और उमा का योग ही विष्णु कहलाता है :

या उमा सा स्वयं विष्णु:
ये चंर्यन्ति हरिं भक्त्याते चंर्यन्ति वृषध्वज् ।
पुलिंग सर्व मीशानं् स्त्रीलिंग भगवत्युमा ।
व्यक्तं सर्व मुमारू प व्यक्तं महेश्वर: ।
उमाशंकर यो योगि: स योगी विष्णुसच्यते ।। [1]

शिव के लिंग की उपासना की जाती है जिसका तात्पर्य यह है कि 'प्रकृति रूप मेखला से वेष्टित परमात्मा ही लिंग से विवर्तित हो रहा है । [2] इस विषय को स्कन्द पुराण में स्पष्ट किया गया है ।

अनादि मच्युतं दिव्यं प्रमाणतीत गोचरम् ।
अधश्चोर्ध्वगतं दिव्यं जीव्यारकं देह संस्थितम् ।।
हृदयादि द्वादशान्तस्यं प्राणा पानोद यास्त गम् ।
अग्राह्य मिन्द्रि यात्मानं निष्कलं कालगं विभुम् ।।
हृत पद्य कोश मध्यस्थं शून्यरूपं निरंजनम् ।
एनं सद्यशिव विद्धि प्रभा से । शरीरे । लिंग रूपिणं ।।

रूद्र कास्व हरि हरात्मक रूप पुराणों में वर्णित है । वे वाक्यों में 'सोमो वैविष्णु: ' एवं 'अग्नि वैरूद्र: और दोनों का मिलाहुआरूप ही 'अग्नी षोमात्मकं 'जगत ' कहा गया है । [3]

भगवान् शिव और विष्णु के क्रोधित मुख से और अन्य देवताओं के शरीर के तेज से ही महालक्ष्मी की उत्पत्ति हुई है । जिसका स्तवन देवताओं ने जगदम्बा कह कर किया । देवताओं के गौरी की स्तुति करने पर उनके शरीर से एक कुमारी की उत्पत्ति हुई । पार्वती के शरीर से उत्पन्न होने के कारण उसे कौशिकी अर्थात् सरस्वती कहा गया । देवताओं के अभिमान् को चूर्ण करने के

---

१. शिव पुराण वायवीय संहिता उत्तराखंड अ० ८
२. कल्याण ... शिव पुराण अंक पृ० ५७४
३. महाभारत

लिए ही उमा का जन्म हुआ था ।

इसी प्रकार दुर्गा , शताक्षी , शाकम्भरी और भ्रामरी आदि देवियों की भी उत्पत्ति हुई । राक्षसों से परित्रस्त होकर देवताओं ने 'महामाया ' की शरण ली और जब उनके कष्ट दूर हो गए तो असंख्य नेत्रों से युक्त होने के कारण देवताओं ने उन्हें 'शताक्षी ' नाम दिया । शाकों द्वारा सबका भरणपोषण करने के कारण 'शाकम्भरी ' और 'दुर्ग ' नामक भयानक दैत्य का वधकरने के कारण उनका नाम दुर्गा रक्खा । देवी ने देवताओं को यह भी बताया कि जब वह भ्रमर का रूप धारण कर अरूण नामक राक्षस का विनाश करेगी तभी उसे 'भ्रामरी कहा जायगा । इन्हीं देवियों की उपासना स्वरूप आगे चलकर विपुल स्तोत्र साहित्य की रचना हुई ।

<u>शिव की भक्ति का स्वरूप</u>

सनत्कुमार ने व्यास को शिव की तीन प्रकार की भक्ति बतलाई थी :

१. मानसिक
२. वाचिक
३. कायिक

ध्यान , धारण और स्मरण द्वारा शिव के स्वरूप का स्मरण मानसिक , स्तुति , कीर्तन द्वारा वाचिक , व्रत , उपवास , ज्ञानादि द्वारा भक्ति कायिक कही जाती है । इसी प्रकार ।१। लौकिकी ।२। वैदिकी ।३। और आध्यात्मिकी भी भेद हैं ।

लौकिकी भक्ति में नाना प्रकार के गो , घृत , उपहार रत्नादि , नृत्य आदि के प्रयोग से भक्ति होती है ।

वेद मंत्रों द्वारा हविष्य की आहुति आदि से जो क्रिया होती है उसे वैदिकी भक्ति कहते हैं ।

आध्यात्मिकी भक्ति दो प्रकार की मानी गई है :
।१। साख्या भक्ति ।२। यौगिकी भक्ति ।

सांख्या भक्ति में रूद्र के स्वरूप का चिंतन किया जाता है । योग रूप में भगवान् रूद्र का ध्यान ही पराभक्ति कहलाता है । यही यौगिकी भक्ति है ।

यद्यपि भक्तिकाल के अन्तर्गत हिन्दी भाषी क्षेत्रों में शैव और शाक्त मतों का प्रभाव अपेक्षाकृत क्षीण हो गया था फिर भी इनका प्रभाव तत्कालीन भक्ति साहित्य पर किसी न किसी रूप में प्राय: सर्वत्र लक्षित होता है । राम काव्य और कृष्णकाव्य दोनों में शिव की महिमा का वर्णन उपयुक्त प्रसंगों में प्राप्त होता है , और ऐसे भी स्तोत्र मिलते हैं जिनमें शैवागम एवं पुराणों में वर्णित शिव तत्व का गम्भीर एवं मार्मिक निर्देश किया गया है । `मानस ` के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी जी ने जिस `शिव-स्तोत्र' का समावेश किया है वह शिव तत्व के ज्ञान एवं शिव के प्रति भक्ति का बड़ा ही मनोज्ञ समन्वय प्रस्तुत करता है । गोस्वामी जी की `विनय पत्रिका ` में भी अनेक शिव-स्तोत्र हैं जिनमें कवित और तत्वज्ञान का मणिकांचन योग प्राप्त होता है । उन्होंने शिव को `सेवक स्वामि सखा सिय पीके ` कहकर संबोधित किया है । उनके इस कथन में प्रत्यभिज्ञादर्शन , पाशुपत दर्शन , शिवाद्वैत एवं लकुलीश मत सबका सार मिलता है ।

उत्तर भारत की निर्गुणभक्ति परम्परा

इस विवेचन में यह स्पष्ट किया गया है कि दक्षिण भारत की भक्तिभावना ने उत्तरभारत में जो रूप ~~सम्क~~ उसी ~~के समानपात एक ऐसी~~ के रूप में परिणति पाई । उस समय एक ऐसी विचार धारा थी जो अवतारवाद और कर्मकाण्ड आदि का विरोध करती थी और इड़ा पिंगला आदि नाड़ियों की ओर संकेत करने वाली रहस्य पूर्ण बातें सुनाकर लोगों को प्रभावित करती थी । सामाजिक आडम्बर एवं जातिवाद के संकीर्ण वातावरण में और भी एक विशेष भावना का सूत्रपात किया । परिणामत: कुछ संत

महात्माओं ने निर्गुण ब्रह्म की वाणी को जन जन में पहुंचाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन संतों के विषय में लिखा है :

'वे लोगों के भोगपरक भगवदिमयक आचरण से असंतुष्ट थे । श्रुति और श्रुति परम्परा में आने वाले धर्म ग्रन्थों को कर्तव्य अकर्तव्य के नियमन के लिए उन्होंने अविसवादी प्रमाण के रूप में स्वीकार किया ।'[१.] इसी समय कुछ ऐसे भी सन्त हुए जिन्होंने सूफी मत का प्रचार किया और हिन्दुओं की घरेलू कहानियों को अपने प्रचार का साधन बनाया । जायसी इस परम्परा के मुख्य कवि माने जाते हैं । इस प्रकार निर्गुण संतों की परम्परा प्रारम्भ हुई जिसमें कुछ ज्ञान को महत्त्व देते थे वे 'ज्ञान मार्गी' और जो प्रेम को महत्त्व देते थे वे 'प्रेममार्गी' कहलाये ।

<u>ज्ञानमार्गी सन्त परम्परा</u> :

इस प्रकार की परम्परा का आविर्भाव हिन्दी भक्ति साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना कहा जा सकता है । इस परम्परा के संतों ने एकेश्वरवाद को महत्व दिया है और मूल में निराकार ब्रह्म की कल्पना की है । नाम की महत्ता संत साहित्य में विशेष स्थान रखती है । समस्त संतों ने माया को निकृष्ट स्थान दिया है क्योंकि इसी के प्रभाव से मानव कर्तव्य च्युत हो जाता है । इनपर नाथ संतों का भी प्रभाव परिलक्षित होता है क्योंकि कबीर एवं अन्य अनुयायी संतों ने हठयोग को ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन माना है । संतों की भक्ति भावना मे रहस्यवाद की प्रधानता है । कबीर के रहस्यवाद का प्रभाव अद्वैतवाद और सूफी मत को मिश्र से हुआ है । उन्होंने अपने गम्भीर सिद्धान्तों को रूपकों द्वारा अभिव्यक्त करने का

---

१. दे० हजारी प्रसाद द्विवेदी .. मध्यकालीन धर्म साधना पृ० ८७.८८

प्रयत्न किया है ।

निर्गुण संतों ने भक्ति-भावना में सहजावस्था को अपना प्राप्तव्य माना है। कबीर ने कभी 'सहज' एवं 'शून्य' दोनों को एक साथ लिया है और कभी कभी उन्हें पृथक् पृथक माना है। उनका 'सहज' परमतत्त्व के अमृतरस की उपलब्धि का बोधक है। इसके पर्याय के रूप में कबीर ने अमरत्व लय निरंजन, समाधि आदि अनेक नाम दिए हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस अवस्था के विषय में लिखा है .. "यह वह अवस्था है जब मन और प्राण एकीभूत हो जाते हैं और जब चंचल मन स्थिर और वशवर्ती हो जाता है। .. ऐसी अवस्था में उसके भीतर भी शून्य है बाहर भी शून्य है .. आसमान में मैं जैसे कोई सूना घड़ा रखा हो। परंतु असल में वह भीतर से भी पूर्ण होता है, बाहर से भी पूर्ण होता है।"[1] इस अवस्था प्राप्ति हेतु 'दृष्टादृष्ट भाव' से ओतप्रोत होना पड़ता है। काया की शुद्धि 'सहज' से ही हो सकती है काष्ठ में व्याप्त अग्नि की तरह साधक के भीतर भगवान् की जो ज्योति प्रकाशित रहती है, वही बड़े सहजभाव से साधन द्वारा यथा समय प्रकट हो जाती है।[2] इसकी प्राप्ति से समस्त परिताप नष्ट हो जाते हैं :

सबु पाया सुख अपना, अस दिल <s>की</s> दरिया पूरि।
सकल पाप सहजे गये, जब साँई मिल्या हजूरि ।।[3]

इस स्थिति से नाम, स्मरण, पूजा आदि की अवस्थाओं की प्राप्ति हो जाती है और साधक उसी प्रभु की सेवा में रत हो जाता है। संतों ने इसे 'मध्य भाव' या 'मध्यम मार्ग' भी कहा है जिसे वस्तुत: मन की साधना कहा जा सकता है। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने इसे बौद्ध धर्म से लिया हुआ मानते हैं। जैसा उन्होंने लिखा है .. 'यह मध्य या बीच

---

१. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी .. कबीर पृ० ५०,५१
२. सं० कुँवर चन्द्र प्रकाशसिंह .. अक्षयरस की भूमिका पृ० ५६
३. कबीर ग्रंथावली पृ० १४

का मार्ग , जिसे हम जानते हैं कि निर्गुण संप्रदाय वालों ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से लिया था ।"[1] कुछ लोग इसका उद्भव गीता से मानते हैं । परन्तु इसे तर्क संगत नहीं कहा जा सकता । गीता में इसी भाव का उपदेश दिया गया है और संभवत: निर्गुण संत बौद्ध सिद्धान्तों की अपेक्षा गीता के निकट है । भगवान् कृष्ण ने कहा है कि मनुष्य अतिवाद का त्याग करके ही ब्रह्मरूप प्राप्त कर लेता है जिसके द्वारा मोह का नाश हो जाता है । उसी प्रकार संत भी 'मध्य ममार्ग' से सहजावस्था के साध्य की प्राप्ति कर लेते हैं । संतों की वाणी में , 'पारिख' नाम को अंग के विषय में पद मिलते हैं जिसमें सत्य की परीक्षा के महत्त्व को स्पष्ट किया गया है । संत लोग परीक्षित सत्य को ही महत्त्व देते हैं सभी संतों ने पूजापाठ , तीर्थाटन , कर्मकाण्ड , अस्पृश्यता , पर्वस्थान आदि का खंडन किया है । आचार्य शुक्ल ने इसका कारण इस्लाम का प्रभाव माना है ।[2] कुछ विद्वान इन पर , वज्रयानी संतों या नाथपंथियों का प्रभाव मानते हैं । वस्तुत उपनिषदों के उदय से ही इस प्रकार की विरोधात्मक प्रवृति का सूत्रपात हुआ था । मुण्डक उपनिषद में यज्ञादि कर्मों की निंदा की गई है । 'उपनिषदों में कर्म के स्थान पर ज्ञान का प्राधान्य है ।'[3] इस प्रकार अर्धर्म के खंडन की यह परम्परा अति प्राचीन है और इसे सिद्ध अथवा नाथों से प्रभावित नहीं माना जा सकता । उनको यह प्रेरणा संभवत: उपनिषदों से ही प्राप्त हुई होगी । संतों ने सत्संग को अधिक महत्त्व दिया है । अत: उपनिषदों का ज्ञान उन्होंने सत्संग से ही प्राप्त किया होगा ।

निर्गुण संतों के साहित्य में तीन प्रकार की दार्शनिक विचार धाराएं मिलती हैं .. 'वेदान्त के पुराने मतों के नाम से यदि उनका निर्देश करें तो उन्हें अद्वैत भेदाभेद और विशिष्टाद्वैत कह सकते हैं ।'[4] कबीर को अद्वैत वादी कहा जा सकता है । अन्य संतों में दादू , मलूक , भीखा , जगजीवनदास , सुंदरदास आदि भी इसके अनुयायी हैं । नानक और उनकी शिष्य परम्परा भेदाभेदी मत की है तथा शिवदयाल और उनके शिष्य विशिष्टाद्वैतवादी कहे जा सकते हैं । इन लोगों की स्तोत्रत्मक रचनाओं में यह वैचारिक भेद कहीं कहीं स्पष्ट लक्षित होता है ।

~~१. डॉ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० १८८~~
२. आचार्य शुक्ल .. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ५७
३. डा० रामानंद तिवारी .. भारतीय दर्शन पृ० ८१ . ८२
४. डा० पीतम्बरदत्त बड़थ्वाल हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० ११५

इस मत के प्रवर्तक कबीर थे जिनकी शिष्य परम्परा में आगे चलकर और भी पंथ उत्पन्न हो गए। उनमें से मुख्य ये हैं :

१. कबीर पंथ

२. नानक पंथ। सिख पंथ।

३. रैदास पंथ

४. दादू पंथ

५. मलूक पंथ

कबीर पंथ : इस पंथ के प्रवर्तक महात्मा कबीर दास जी थे जो स्वामी रामानंद को अपना गुरू मानते हैं। जैसा कि :

'काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानंद चेताये।'

यह निर्गुण सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त हैं और उनकी भक्ति भावना में एकेश्वरवाद की प्रधानता है। उनकी आत्मा एक विरहणी की भांति अपने प्रियतम की प्राप्ति हेतु व्याकुल रहती है। इनके पदों में वेदान्त तत्व, पाखंड, अन्ध विश्वास मिथ्याचार आदि के प्रति घृणा, संसार की क्षण भंगुरता, हार्दिक शुद्धि, माया, अस्पृश्यता आदि की प्रधानता है। नाथ पंथियों के हठयोग का भी प्रभाव कबीर पर परिलक्षित होता है। उ उन्होंने परमात्मा को मित्र, माता, पिता पति आदि अनेक रूपों मे देखा है। निम्नांकित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है :

राम मोर पियु मैं राम की बहुरिया।

अथवा

हरि जननी मैं बालक तोरा।।

उनके सिद्धान्तों में राम नाम को महत्त्व दिया गया है। परन्तु उनके राम दशरथ नंदन राम न होकर घट घटवासी हैं। उन्होंने अनेक स्थलों पर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है :

लाली मोरे लाल की , जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई , मैं भी हो गई लाल ।।
ज्यों तिल माही तेल है , ज्यों चकमक मैं आग ।
तेरे साईं तुझमा मैं जागि , सकै तो जाग ।।
कस्तूरी कुंडलि वसै , मृग ढूंढै बन माहिं ।
ऐसे घट घट राम हैं दुनियां देखे नहिं ।।

इनके मत मैं ज्ञान तत्व की प्रधानता है और माया को निम्न कोटि का स्थान दिया गया है । ज्ञान मे विषय मैं उन्होंने लिखा है :

संतों माई आयी ज्ञान की आंधी ।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी , मोह वलीदां टूटा ।
तिषना छानि परी घर ऊपर कुबुधि का भांडा फूटा ।
तथा .. कबीर
माया महा ठगिनि हम जानी ।
त्रि गुण फांस लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी ।
.. कबीर

सांसारिक माया जाल आदि का त्याग करके ही प्रभु की भक्ति की जा सकती है । व्यर्थ का आडम्बर मनुष्य को पथ-भ्रष्ट कर प्रभु से विमुख कर देता है । तभी तो वे कहते हैं :

जब मैं था तब हरि नहीं , अब हरि है मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति सांकरी , तामैं दोउ न समाहि ।।

प्रभु तक पहुंचने के लिए :
यहां तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहि ।
सीस उतारे हाथ करि तब पैठे घर माहि ।।

उन्हें शांतमय जीवन अधिक प्रिय था और वे सदैव अहिंसा ,

सदाचार , सत्य आदि को अधिक महत्व देते थे । इनकी भक्ति भावना से प्रभावित होकर इनके अनेक शिष्य हो गए थे । प्रारम्भ में नानक आदि इसी 'पंथ' के अनुयायी थे ।

कबीर वाणी का संग्रह 'बीजक' नाम से हुआ है । जिसके तीन भाग हैं :

।१। रमैनी ।२। सबद ।३। साखी ।

इसमें उनकी भक्ति-भावना का पूर्ण विवेचन है ।

नानक पंथ

इस पंथ का प्रवर्तन नानक जी द्वारा हुआ था । इसे सिख मत , गुरू मत एवं खालसा मत भी कहा जाता है । ~~पिता द्वारा दी गई धनराशि को ये साधु सन्तों को एक बार इन्होंने~~ पिता द्वारा दी हुई धनराशि को जिसे उन्होंने वाणिज्य कर्म के लिए इन्हें दी थी साधु संतों को अर्पित कर घर लौट आए और उन्हें सारा वृतान्त सुनाकर कहा कि आज जो सौदा उन्होंने किया है वह 'सच्चा सौदा' है । उनके पदों का संग्रह 'ग्रन्थ साहिब' के नाम से हुआ है जिसमें उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता , अस्पृश्यता , एकेश्वरवाद , सत्संग , अहिंसा , सत्य , प्रेम गुरू सेवा आदि को प्रमुख स्थान दिया है। डा० पीतम्बर दत्त बड़थ्वाल ने इनके सिद्धान्तों को इस प्रकार स्पष्ट किया है : " उन्होंने मूर्तिपूजा , अवतार वाद और जाति पाति का खंडन किया परन्तु त्रिमूर्ति -- ब्रह्मा , विष्णु , महेश -- के सिद्धान्त को स्पष्ट में स्वीकार किया । प्रणावऊं को उन्होंने अपनी वाणी में आपके साथ स्थान दिया/एक सद्विप्रा बहुधा वदंति' से वेदों में ऋषियों ने जोर दार्शनिक चिंतन का आरम्भ किया था , उसी का पूर्ण विकास वेदान्त में हुआ और उसी का सार लेकर नानक ने 'ॐ सति नामु' करता पुरूष निरभौ अकाल मूरति निवैर अजूनि सैभं की भक्ति का प्रसार किया और एकेश्वरवाद का जो आकर्षण इस्लाम मे था उसके स्वधर्म मे ही लोगों को दर्शन कराये ।[१]

---

१. डा० पीतम्बर दत्त बड़थ्वाल .. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० ६५

सिख मत में ईश्वर को सत् श्री अकाल 'खालसा' जैसे नामों से अभिहित किया गया है , और डा० ~~भगवान~~ भगवान् के इन रूपों को लक्ष्य कर अनेक स्तोत्र भी लिखे गये है । इन कवियों मे जपु जी , पट्टी आरती , दक्षिणीय ओंकार , सिद्धगोष्ठी आदि प्रमुख हैं । निम्नांकित में इनके उपदेश का स्पष्टीकरण हो जाता है :

अंमृतु छोडि काहे विषु खाइ ।।१।।
ऐसा गिआनु जपहु मन मेरे ।
होवहु चाकर साचे केरे ।।१।।
गिआनु , धिआनु सभु कोई रवै ।
बांधनि बांधिआ सभु जग भवै ।।२।।
सेवा करे सु चाकर होई ।
जलि , थलि , महि अलि रवि रहिआ सोई ।।३।।
हम ~~नह~~ नहिं ~~अलि रवि रहिआ सोई~~ चंगे बुरा नहीं कोइ ।
प्रणवति नानकु तारे सोइ ।।४।।१।।२।।

.. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी

नानक की मृत्यु के पश्चात् श्री गुरू अंगद जी , श्री गुरू अमरदास जी , श्री गुरूरामदास जी , श्री गुरू अर्जुनदेव जी , श्री गुरू हरिगोविन्द जी , श्री गुरू हरिराइ जी , श्री गुरू हरिकृष्ण जी , श्री गुरू तेग बहादुर जी , श्री गुरू गोविन्द सिंह जी आदि हुए हैं । इनमें गुरू गोविन्द सिंह ने निर्गुण और सगुण दोनों मैं समन्वय का प्रयत्न किया है । पूर्ववर्ती गुरूओं ने जहां केवल निर्गुण ब्रह्म के विविध स्वरूपों का स्तवन किया है वहा गुरू गोविंद सिंह ने राम कृष्ण शिव , शक्ति आदि सबका यश गाया है ।

<u>रैदास पंथ</u>

इस पंथ के प्रवर्तक 'रैदास जी' थे । इनके स्तोत्रात्मक पद का एक

प्रभु जी तुम चंदन हम पानी । जाकी अंग अंग बास समानी ।
प्रभु जी । तुम घन ,बन हम मोरा । जैसे चितवत चंद चकोरा ।
प्रभु जी । तुम दीपक , हमबाती । जाकी जोति बरै दिनराती ।
प्रभु जी । तुम मोती , हम धागा । जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ।
प्रभु जी । तुम स्वामी , हमदासा । ऐसी भक्ति करै रैदासा ।।

ईश्वर की अनन्यता की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है :

जहं जहं जा ओं तुम्हरी पूजा ।
तुमसा देव और नहिं दूजा ।।

.. रैदास

काम , क्रोध , लोभ मोह के कारण वे अत्यंत ही विवश हैं :

नरहरि । चंचल है मति मोरी कैसे भगति करूं मैं तेरी ।
तू मोहि देखै , हौं तोहि देखूं ,प्रीति परस्पर होई ।
तू मोहि देखै , तोहिन देखू , यहि मति सब बुधि खोई ।
सब घट अंतर रयसि निरंतर , मैं देखन नहिं जाका ।

.. रैदास

इस पंथ के अनुयायी `रैदासी` कहलाते हैं ।

दादू पंथ

महात्मा दादू दयाल जी इस पंथ के प्रवर्तक थे । ये बड़े ही त्यागी स्वभाव के भक्त थे वे अन्तर्मुख रहकर परम ज्योति का ध्यान , स्मरण , अभ्यास एवं सहज योग से ईश्वर में लय रहना ही सर्वो परि साधन मानते थे । इनके मत में अहिंसा , सत्य अस्तेय , शौच , शान्ति , अपरि ग्रह , वैराग्य , तितिक्षा , दया , क्षमा समता , निराभिमानता आदि सात्विक गुणों की प्रधानता है । इन्होंने म ने भी सन्तों के मध्यम् मार्ग को माना है । वे इसे `मद्धिभाव` कहकर इस प्रकार स्पष्ट करते हैं :

देह रहै संसार में जीव राम के पास ।
दादू कछु व्यापै नहीं काल भाल दुख त्रास ।।

इनकी भक्ति का मुख्य उद्देश्य निरंजन निराकार ब्रह्म की सत्ता का अनुभव करना ही है । दादू ने भी परीक्षित सत्य को महत्व दिया है क्योंकि इससे अनेकता आदि भावनाओं का विनाश हो जाता है :

पूरन ब्रह्म विचारिये सकल आत्मा एक ।
काया के गुन देखिए नाना वरन अनेक ।।

.. दादू

पहले इस सम्प्रदाय का कोई नाम नहीं था । पीछे से शिष्यों ने 'ब्रह्म सम्प्रदाय' का नाम रख लिया । जन सामान्य मे यह नाम अधिक प्रचलित न हुआ । यह सम्प्रदाय 'दादू पंथ' के नाम से प्रसिद्ध है । गरीबदास , जगजीवनदास , रज्जब जी बड़े सुंदरदास जी आदि संत प्रधान शिष्यों में हैं ।

दादू पंथियों की दो प्रधान शाखायें हैं । एक वेषधारी और दूसरे नागा । वेषधारी भगवा धारण करते हैं और नागा श्वेत वस्त्र धारण कर साधारण गृहस्थों की भांति रहते हैं । दोनों प्रकार के साधु अविवाहित रहते हैं और उनकी शिष्य-परम्परा ही चलती है ।

मलूक पंथ

इस पंथ के प्रवर्तक मलूकदास जी थे । रामनाम की महिमा का गान ~~क~~ इनके धर्म में मुख्य था । परंतु इनके राम अवतारी न होकर सर्वनियन्ता और घट घट वासी हैं । गीता को इनके पंथ में विशेष स्थान दिया जाता है । इनके सम्प्रदाय में गहिस्थ्य जीवन पर प्रतिबन्ध नहीं है परन्तु गद्दी प्राप्त होने पर ब्रह्मचर्य मय जीवन व्यतीत करना पड़ता है । इनकी परम्परा में रामसनेही ,कृष्ण सनेही ,ठाकुरदास , गोपालदास , कुंजबिहारी दास , रामसेवक , शिव प्रसाद , अयोध्या प्रसाद आदि महंत प्रमुख हैं ।

सूफीमत

वैष्णव धर्म के बिरोध में एक और विचारधारा भक्ति साहित्य के साथ साथ प्रचुर सूफी काव्य हिन्दी में लिखा गया है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस विचारधारा के विषय में अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :

'ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान प्रेम की पीर' की कहानियां लेकर

साहित्य क्षेत्र में उतरे । ये कहानियां हिन्दुओं के ही घर की थी । इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है ।[1]

सूफीमत की भक्ति का स्वरूप प्राय: वही है जो हमारे यहां की भक्ति का है । इसके अनुसार ईश्वर एक है जिसका नाम 'हक' है । आत्मा और ईश्वर में कोई अंतर नहीं है । ईश्वर तक पहुंचने के लिए 'सूफीमत' में 'शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत' की अवस्थाओं को पार करना पड़ता है । मारिफत की अवस्था में 'आत्मा 'बका' को प्राप्त करने के लिए 'फना' हो जाती है । इस प्रेम सहयोग प्रदान करता है । और अंत में अनहल हक की अवस्था आ जाती है । इन अवस्थाओं का विवेचन 'जायसी' के अखरावट में मिलता है :

कही 'सरीयत' चिस्ती पीरू । उधरित असरफ और जहंगीरू ।
राह हकीकत परै न चूकी । पैठि मारफत मार तु डूकी ।।

.. अखरावट

सूफी साधना में प्रेम तत्व की प्रधानता है । आत्मा परमात्मा से प्रेमकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करती है । आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने इनके प्रेम के विषय में लिखा है .. 'परमात्मा की सता का सार है प्रेम ; सृष्टि के पूर्व परमात्मा का प्रेम निर्विशेष भाव से अपने ऊपर था इससे वह अपने को अकेले अपने आप को ही व्यक्त करता रहा फिर अपने उस एकान्त अद्वैत प्रेम को उस अपरत्व रहित प्रेम को, बाह्य विषय के रूप में देखने की इच्छा से उसने शून्य से अपना एक प्रतिरूप या प्रतिबिम्ब उत्पन्न किया जिसमें उसी के गुण और नामरूप थे । यही 'प्रतिरूप' 'आमद' कहलाया जिसमें और जिसके द्वारा परमात्मा ने व्यक्त किया :

आपुहि आपुहि चाह देखावा । आदम रूप भेस धरि आवा ।[2]

---

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल .. जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० २
२. आचार्य राम चंद्र शुक्ल .. जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृ० १४३. १४४

इस प्रकार `सूफीमत के मूल में अद्वैतवाद की प्रधानता दिखाई पड़ती है । परन्तु जायसी सूफियों के अद्वैतवाद से ऊपर उठकर वेदान्त के अद्वैतवाद तक पहुंचे हैं और साथ ही भारतीय मत मतान्तरों को अपनाने का प्रयत्न करते हैं । इनके मत में `अनहल हक ` की अवस्था यजुर्वेद के वृहदारण्यक उपनिषद का `अहं ब्रह्मास्मि ` का प्रतिपादन करती है । अहंकार को भुलाकर ही हम ब्रह्म में लीन हो सकते हैं । इस प्रकार की भावना जायसी आदि के प्रबंध काव्यों में सवत्रं विद्यमान है :

हौं हौं कहत सबै मति खोई । जौ तू नाहि आहि सब कोई ।
आपुहि गुरू सो आपुहि चेला । आपुहि सब औ आपु अकेला ।।

नित्य तत्वक ब्रह्म की अनुभूति के लिए वेदान्त में प्रतिविम्बवाद सृष्टिवाद आदि अनेक वाद चलते हैं परंतु `प्रतिबिंववाद ` का तात्पर्य है `नाम रूपात्मक ` दृश्य ब्रह्म के प्रतिविम्ब हैं । बिंब ही वास्तव में ब्रह्म है और यह संसार उसका प्रतिविम्व माना जाता है । इस भावना को जायसी के पद्मावत में अत्यंत ही अनूठे ढंग से व्यक्त किया गया है :

देखि एक कौतुक हौं रहा । रहा अंबर पट पैनहि अहा ।
सखर देख एक मैं सोई । रहा पानि औ पान न कोई ।
सरग आइ धरती महं छवा । रहा धरति पै धरतन आवा ।

..पद्मावत

उस ब्रह्म की ज्योति सर्वत्र विद्यमान है :

देखेउ परमहंस परछाहीं । नयन ज्योति सौं बिछुरत नाहीं ।
जगमग जल महं दीसै जैसे । नाहिं मिला नहिं बेहरा तैसे ।।

..पदमावत

`स्तुतिखंड ` में इस्लामी विश्वास का भी अनुभव किया जा सकता है :

कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू । कीन्हेसि तेहि पिरीति कविलासू ।

.. पद्मावत

उनके अखरावट में उपनिषद की अनेक बातें विद्यमान है :

पवनहिं मा जो समाना । सब मा बरन जो आपु अमाना ।
जेत डोलाए वेना डोलै । पवन सबद होइ किछु इन बोलै ।।

.. अखरावट ८

ईशोपनिषद् में भी यही बात कही गई है :

अने जदेकं मनसो जवीयो नैन देवा ऽऽप्नु वन पूर्व मर्षतु ।
वद्धाव तो ऽन्यानत्योति तिष्ठतस्मिन्तयो मातरिश्वादधाति ।।४।।

.. ईशोपनिषद .

इस प्रकार सूफियों की भक्ति के विषय में आचार्य शुक्ल ने स्पष्ट लिखा है .. "प्रेमाभिलाष की प्रेरणा से प्रेमी भक्त उस अखंड रूप ज्योति की किसी न किसी कला के दर्शन के लिए सृष्टि का कोना कोना झाँकता है प्रत्येक मत और सिद्धान्त की ओर आंख उठाता है और सर्वत्र जिधर देखता उधर उसका कुछ न कुछ आभास पाता है । यही उदार प्रवृत्ति सब सच्चे भक्तों की रही है ।"[1] सूफी काव्यधारा में कुतुबन , मंझन , शेख नवी , उसमान आदि ~~अन्यतम~~ कवि हैं । इनमें जायसी का साहित्य सर्वश्रेष्ठ है । 'नखशिख वर्णन' सूफी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है । यह 'नखशिख वर्णन' प्रतीकात्मक है और उसके द्वारा वस्तुत: परम प्रियतम की स्तुति ही की गयी है ।

सगुण एवं निर्गुण भक्ति साहित्य की सामान्य विशेषतायें :

इस प्रकार सगुण एवं निर्गुण भक्ति साहित्य में कुछ सामान्य विशेषतायें विद्यमान हैं जिनका विवेचन भक्ति साहित्य में समान रूप में मिलता है । प्रथम विशेषता जो दोनों प्रकार की भक्ति धारा में प्राप्त होती है वह है भगवान् के नाम की महत्ता भारतीय साधना में नाम की महिमा का सर्वश्रेष्ठ स्थान माना गया है । उसका नाम ही अनंत शक्तियों का भंडार है । डॉ० गोपीनाथ कविराज ने इसके समर्थन में लिखा है .. "नाम साधना के द्वारा चित्त-शुद्धि तथा देह शुद्धि यथा-सम्भव अवश्य ही होती है , परन्तु जब तक भक्त गुरूदत्त बीज को प्राप्त कर अपने अशुद्ध बीजदेह को शुद्ध काया में परिणत नहीं कर पाता तब तक वास्तविक साधना का सूत्रपात नहीं हो सकता "[2] तुलसी ,

---

१. दे० आचार्य रामचंद्र शुक्ल ..हिन्दी साहित्य का इतिहास भूमिका पृ० १५६
२. डा० गोपीनाथ कविराज ..भक्ति का रहस्य ।निबंध। कल्याण उपनिषद अंक पृ०४

सूर कबीर , जायसी आदि सभी की रचनाओं में नाम की वंदना मिलती है ।

भक्ति साहित्य की द्वितीय विशेषता `गुरू की महत्ता ` को स्वीकार करना है । वैसे परमात्मा स्वयं सब गुरूओं का आदि गुरू है और उसके ब्रह्म , ईश्वर परात्पर आदि अनेक नाम हैं । परन्तु साधना के क्षेत्र में आलोक की प्राप्ति में सद्गुरू से यथार्थ सहायता मिलती है और साधन अपने गन्तव्य स्थल तक पहुँच जाता है । `गुरू अविवेकी साधक की आँखों में ज्ञान का अञ्जन तथा भक्ति का सुरमा लगाकर उसे विवेक सम्पन्न दृष्टा बना देता है । `भक्ति साहित्य में सर्वत्र गुरू महिमा का महत्व स्वीकार किया गया है । इसीलिए समस्त भक्ति साहित्य गुरू की स्तुतियों एवं वंदनाओं से भरा पड़ा है ।

भक्ति साहित्य की तृतीय विशेषता उसकी `अज्ञान एवं `माया ` के प्रति विरोध की भावना है । `अहं ` का त्याग ही साधक का सर्वोपरि कर्तव्य है । बिना इसके साधना अपूर्ण रहती है । वैदिक साधना में इसका सवर्त्र विरोध हुआ है । ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् ही साधक ब्रह्म के प्रति साधक और साध्य का सम्बंध स्थिर कर पाता है । सगुण एवं निर्गुण दोनों ही प्रकार के भक्तों ने इस का निषेध किया है ।

माया महा ठगिनि हम जानी ।

सत् , चित् , आनंद की ~~प्रक्ति~~ प्राप्ति अज्ञान और माया से दूर रहकर ही हो सकती है । सत्संग अविद्या किंवा माया के बंधन से युक्त होने का एक अमोघ उपाय माना गया है । इसलिए सभी प्रकार का भक्ति साहित्य सतसंग की महिमा के वर्णन से परिपूर्ण है ।

भक्ति साहित्य की चौथी विशेषता उसकी आराध्य के प्रति अनन्यता की भावना है । समस्त स्तोत्र साहित्य में यह भावना विद्यमान है ।

भक्ति साहित्य की सगुण धारा में भगवान् के रूप का अनेक रूपात्मक वर्णन मिलता है , इसी प्रकार उसकी निर्गुण धारा में उनकी अरूपता

1.

का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है । मुख्य अंतर यह है कि सगुणोपासक भक्त निर्गुण और अरूप की भी महत्ता स्वीकार करते हैं और अपने स्तोत्रों में भगवान् के इन रूपों की भी वंदना करते हैं , किंतु निर्गुणोपासक संत भगवान् केन्द्र की सगुणता का खंडन करते हैं ।

सगुणोपासक भक्तों के साहित्य में अयोध्या , मथुरा, द्वारावती , चित्रकूट आदि भगवान् के धामों की भी भाव भरी वंदना में एवं स्तुतियाँ मिलती हैं । इसके विपरीत निर्गुणोपासक संतों के साहित्य में इन धामों की महिमा का खंडन मिलता है । इन संतों ने भगवान् के धाम को `सहज ` `शून्य ` `उन्मनी ``तुर्यातीत ` आदि नामों से अभिहित किया है और उसकी वंदना की है ।

विविध सम्प्रदायों के स्तोत्र साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

यदि भक्तिकाल के विविध सम्प्रदायों के स्तोत्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो अनेक वैचारिक विभिन्नतायें और समानतायें प्राप्त होंगी । निम्बार्क सम्प्रदाय के स्तोत्रों में राधादेवी की उपासना सर्वोपरि है और उसी सम्प्रदाय से विकसित होनेवाले राधावल्लभ एवं टट्टी सम्प्रदायों में भी `युगल उपासना ` के विपुल स्तोत्र लिखे गए हैं । राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा की ही अनुग्रह से कृष्ण की प्राप्ति हो सकती है । इन सम्प्रदायों में `निकुंज रस ` के स्तोत्र मिलते हैं जो `राधाकृष्ण ` की निकुंज लीला से सम्बंधित हैं । निम्नोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है :

राधावल्लभ सम्प्रदाय । हित हरिवंश ।

रहौ कोऊ काहू मनहि दिये ।
मेरे प्राणनाथ श्रीराधा , सपथ करौं तिन छिये ।
जे अवतार कदंब भजत हैं धरि दृढ़ ब्रत जु हिये ।
तेउ उमगि तजति मर्जादा बन बिहार रस पिये ।
खेयि रतन फिरत जे घर घर कौन काज इमि जिये ।
हित हरिवंश अनत सचुनाहीं बिनया रसहि पिये ।

....हित हरिवंश :

टट्टी सम्प्रदाय की 'युगल उपासना' निम्नोक्त स्तोत्र से जानी जा सकती है :

बसौ मेरे नैननि मैं दोउ चंद ।
गौर वदनि वृषभानु नंदिनी , स्यामवरन नंद नंद ।
गोलक रहे लुभाय रूप मैं निरखत आनंद कंद ।
जयश्री भट्ट प्रेमरस वंधन क्यों छूटै दृढ़ फंद ।।

.. श्री भट्ट :

चैतन्य सम्प्रदाय में 'राधाकृष्ण' के स्तोत्रों में मधुर भाव की प्रधानता है और राधा की भक्ति को ही प्रमुखता दी गई है :

नंद कुल चंद वृषभानु कुल कौमुदी ,
उदित वृन्दा विपिन विमल आकासे ।
निकट वेष्टित सखी वृन्द वरतारिका ,
लोचन चकोर तिन रूप रस प्यासे ।
रसिक जन अनुराग उदधि तजी मरजाद ,
भाव अगनित कुमुदि नीगन विकासे ।
कहि गदाधर सकल विश्व असुर निधि बिना ।
भानु भव ताप अग्यान न विना से ।

.. गदाधर भट्ट :

परन्तु रामोपासना और कृष्णोपासना के स्तोत्रकारों ने राम एवं कृष्ण के प्रति अपनी अनन्यता का प्रदर्शन किया है । यद्यपि तुलसीदास जी समस्त देवी देवताओं के प्रति श्रद्धावान् हैं परन्तु वे सभी को राम मय ही देखने का प्रयत्न करते हैं । तुलसी तो ..

सीय राम मय सब जग जानी । करहु प्रणाम जोरि जुग पानी ।

कहकर अपनी अनन्यता का परिचय देते हैं । सूर के स्तोत्रों में कृष्ण की अनन्यता की सर्वोत्कृष्टता इसी में है कि वे मंगलाचरण में भी कृष्ण का ही गुण गान करते हैं :

चरणकमल बन्दौं हरिराई ।
जाकी कृपा पंगु गिरिलंघै अंधे को सब कुछ दर्शाई ।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई ।
सूरदास स्वामी करुनामय बार बार बंदहु तेहि पाई ।।

निर्गुणोपासना के संत और सूफी कवियों ने अपने स्तोत्रों में एकेश्वरवाद को महत्त्व दिया है । कबीर की भक्ति भावना शान्त भाव की है । पर कहीं कहीं स्वामी , बंदे , प्रियतम आदि रूपों में भी आराधना की गई है । शान्त भाव के साथ साथ कहीं कहीं मधुर भाव के भी स्तोत्र हैं । निम्नलिखित में प्रियतम रूप से आराधना की गई है :

बालम आओ हमरे गेहरे । तुम बिन दुखिया देहरे ।
सब कहै तुम्हारी नारी , मोरो यह संदेश रे ।
एक मेक है सेजन सोवै , तब लगि कैसो सनेहो ।
अन्न न भावै , नींद न आवै , गृह वन धरै न धीर रे ।।

...कबीर

सिख गुरूओं ने परमात्मा के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों को देखा और अपनी भक्ति भावना का प्रदर्शन किया है :

तेरी महिमा तहै जाणहि । अपण आपतु आपि पछाणहि ।।

३।।४२।।४६।।

रागु माभ्क महला५ पृ० १०८

परन्तु सूफी कवियों के स्तोत्रों में 'प्रेमतत्व' की प्रधानता है और परमात्मा की 'प्रियतमा' रूप में आराधना की गई है उसे वे निर्गुण , निराकार और सर्व व्यापक मानते हैं । जायसी ने हिन्दुओं के देवी देवताओं पद भी स्तोत्र लिखे हैं जिनमें शिव पार्वती 'लक्ष्मी आदि के स्तोत्रों की प्रधानता है । निम्नांकित में शिव की स्तुति की गई है :

नमो नमो नारायन देवा । का मोंहि जोग सकौं का सिवा ।
तू दयाल सबके मन माहीं । सेवा कोटि आस तेहि नाहीं ।

.. पदमावत

इसी प्रकार भक्ति काल का स्तोत्र साहित्य अनेक भाषाओं छंदों में लिखा गया है। तुलसीदास जी ने अवधी और बृजभाषा में अपने स्तोत्र लिखे हैं। जबकि कृष्णमार्गी कवियों के स्तोत्र ब्रज भाषा में हैं। निर्गुण सन्तों के स्तोत्रों में अनेक भाषाओं का सम्मिश्रण हुआ है। इसका मूल कारण अनेक स्थानों और प्रान्तों का भ्रमण कहा जा सकता है। उनकी भाषा को यदि सधुक्कड़ी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। सूफियों ने अवधी भाषा में अपने स्तोत्र लिखे हैं।

भक्तिकाल के स्तोत्रों में विभिन्न प्रकार के छंदों एवं रागरागनियों का भी प्रयोग हुआ है। गोस्वामी तुलसी दास जी ने अपने समय की प्रचलित सभी छंद शैलियों का अनुगमन किया है। उनके स्तोत्रों में, दोहा, चौपाई, सोरठा, छप्पय, रोला, घनाक्षरी, सवैया, वंशस्थ, हरिगीतिका एवं विद्यापति की पदावली का माध्यम अपनाया गया है। कृष्णोपासक कवियों ने अपने स्तोत्र नाना प्रकार की राग रागनियों, पदों, दोहा, चौपाई, सवैया, घनाक्षरी आदि छंदों में लिखे हैं। कबीर आदि संतों ने दोहा और पदों में तथा प्रेम मार्गी कवियों ने दोहा चौपाइयों में अपने स्तोत्रों की रचना की है। इस प्रकार भक्तिकाल के स्तोत्रों में अपने समय की प्रचलित सभी छंद शैलियाँ अपनाई गई हैं।

इसी प्रकार इस काल में समस्त रसों एवं अलंकारों का भी प्रयोग किया गया है। पुष्टिमार्गी भक्तों ने 'वात्सल्य और श्रृंगार को अधिक महत्व दिया है। भ्रमर गीत का प्रसंग लाकर संयोग एवं वियोग श्रृंगार का बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया गया है :

<u>वियोग श्रृंगार</u> :

बिनु गुपाल बैरिन भइ कुंजें।
तब ये लता लगति तनु शीतल अब भइ विषम अनल की पुंजै।

.. सूरदास

रह गया शान्त रस उसकी प्रधानता भक्ति साहित्य में सर्वत्र विद्यमान है।

अतएव भक्ति कालीन स्तोत्र साहित्य अपने कलात्मक रूप में हिन्दी की अमूल्य निधि कहा जा सकता है।